International Journal of Jyotish Research: 2019; 4(1): 16-20

International Journal of Jyotish Research
(वेदचक्षु)

ISSN: 2456-4427
Impact Factor: RJIF: 5.11
Jyotish 2019; 4(1): 16-20
© 2019 Jyotish
www.jyotishajournal.com
Received: 09-11-2018
Accepted: 12-12-2018

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, उत्तराखण्ड, भारत

Correspondence
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, उत्तराखण्ड, भारत

ज्योतिषशास्त्र में व्याधि निरूपण

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी

सारांश
मानव-सृष्टि विधाता (सृष्टिकर्ता) की अद्भुत व सर्वोत्कृष्ट देन है। आध्यात्मिक सूत्रों के अनुसार मानव स्व-स्व कर्मानुरोधेन विविध प्रकार के योनियों में जन्म लेता हैं। ऋषियों द्वारा शास्त्रों में प्रणीत चौरासी लाख योनियों में मानव योनि को ही सर्वोत्तम बतलाया गया है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी रामचरितमानस में कहा है कि-''कर्म प्रधान विश्व रचि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा।।'' इसका मूलार्थ है कि मानव जीवन में सर्वप्राप्ति कर्माश्रित (संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण) है। सर्वविदित है कि व्याधियों का सम्बन्ध मानवीय भौतिक शरीर से ही है। ज्योतिषशास्त्र में व्याधि के कारण कर्म ही बताये गयें है, जिसमें दोषत्रय (कफ, पित्त एवं वात) के प्रतिनिधि कारक ग्रह अपनी-अपनी दशा के अनुरूप शुभाशुभ फल प्रदान करते हैं।[१] यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि सर्वसाधन सम्पन्न व्यक्ति भी व्याधियों के समक्ष किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। इसका कारण है कि व्याधियाँ कहीं बाहर से न आकर स्वयं के शरीर में ही विद्यमान रहती हैं। कहा भी गया है – 'शरीरं व्याधिमन्दिरम्।' किन्तु यह कथन ही पर्याप्त नहीं है। इसका ज्ञान होना भी आवश्यक है कि किस समय में कौन सा रोग होगा? किस समय कौन सी व्याधि शरीर को प्रभावित करेगी? वस्तुत: व्याधि के निदान में आधुनिक दृष्टिकोण से चिकित्सा शास्त्र ही सक्षम विज्ञान है किन्तु इसके साथ एक कठिनाई भी है। चिकित्सा विज्ञान उस समय निदान कर पाता है जब व्याधि का अधिकार शरीर पर हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में व्याधि से लड़ने का पर्याप्त अवसर चिकित्सक को नहीं मिल पाता है। जबकि ज्योतिष शास्त्र इन व्याधियों के प्रकट होने से पूर्व इसकी सूचना देने में सक्षम है। यही कारण है कि भारतीय चिकित्सा विज्ञान का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध ज्योतिष शास्त्र के साथ रहा है।

कूट शब्द: सृष्टिकर्त्ता, व्याधि, दोषत्रय, चिकित्सा, कर्माश्रित, जन्मान्तरकृत, क्रियाशिलता।

प्रस्तावना
भारतीय ज्योतिष तथा चिकित्सा पद्धति (आयुर्वेद) एक दूसरे के पूरक रहे हैं। आचार्य चरक ने लिखा है – 'कर्मजा व्याधय: केचित् दोषजा सन्ति चापरे।' (चं0सं0 २.४०) त्रिष्ठाचार्य का भी मत है – 'जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।।' (उ0प्र0भा0 १३.३६) अर्थात् कुछ व्याधियाँ पूर्वजन्म के कर्मों के प्रभाव से होती है तथा व्याधियाँ शरीरस्थ दोषों (त्रिदोष) के प्रभाव से होती है। त्रिदोषजन्य व्याधियों का निदान चिकित्सा विज्ञान (आयुर्वेद) द्वारा सरलतापूर्वक हो जाता है। ज्योतिषशास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य वराहमिहिर ने स्वग्रन्थ लघुजातक में लिखा है कि –

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्यकर्मण: पंक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव।।[२]

अर्थात् पूर्व जन्म के कर्मों के परिणामस्वरूप जो कुछ (शुभ-अशुभ) इस जन्म में प्राप्तव्य है उसे ज्योतिष उसी प्रकार दिखला देता है, जैसे अन्धेरे कमरे में रखी हुई वस्तुओं को दीपक का प्रकाश दिखला देता है।
गर्भाधान से प्रसवकाल तक, प्रसूति से शरीरान्त तक प्राणियों पर प्रतिक्षण पड़ने वाले अन्तरिक्ष शक्तियों के प्रभाव का सूक्ष्म आकलन ज्योतिष शास्त्र द्वारा किया जाता है। ज्योतिष शास्त्र की सूक्ष्म अन्वेषण की प्रक्रिया आधान काल से ही प्रारम्भ हो जाती है। गर्भस्थ शिशु के विकास क्रम को बतलाते हुए वराहमिहिर ने स्वग्रन्थ लघुजातक में लिखा है –

कललघनावयवास्थित्वकरोमस्मृतिसमुद्भवा: क्रमश:।
मासेषु शुक्रकुजजीव- सूर्यचन्द्रार्किसौम्यानाम्।।
अशनोद्वेगप्रसवा: परतो लग्नेशचन्द्रसूर्याणाम्।
कलुषै: पीडापतनं निपीडितैर्निर्मलै: पुष्टि:।।[३]

अर्थात् आधान काल से आरम्भ कर प्रसवकाल तक गर्भस्थ शिशु का मासिक विकास तद्–तद् मासों के अधिपति ग्रहों की परिस्थिति के अनुरूप ही होता है। इसलिए गर्भ के प्रत्येक मास के स्वामी ग्रहों का उल्लेख किया गया है। यथा-

मास	गर्भ की अवस्था	स्वामी
प्रथम	कलल	शुक्र
द्वितीय	घन	भौम
तृतीय	अवयव	गुरु
चतुर्थ	अस्थि	सूर्य
पंचम	त्वक्	चन्द्र
षष्ठ	रोम	शनि
सप्तम	स्मृति	बुध
अष्टम	अशन	लग्नेश
नवम	उद्वेग	चन्द्र
दशम	प्रसव	सूर्य

इसी प्रकार प्रसव के अनन्तर जन्मकालिक ग्रह स्थिति के अनुसार जातक के शारीरिक एवं मानसिक विकास का आकलन किया जा सकता है। जातक के प्रत्येक अंगों की स्थिति का ज्ञान करने के लिए कालपुरुष की कल्पना की गयी है। कालपुरुष के अंगों में ज्योतिषशास्त्रोक्त सभी राशियों का न्यास किया गया है जो इस प्रकार है–

कालपुरुष के अंग	राशि
सिर	मेष
मुख	वृष
बाहु	मिथुन
हृदय	कर्क
उदर	सिंह
कटि	कन्या
वस्ति	तुला
गुह्य	वृश्चिक
उरू	धनु
जानु	मकर
जंघा	कुम्भ
चरण	मीन

शारीरिक सूक्ष्म ज्ञान के लिए नक्षत्र पुरुष का भी निरूपण किया गया है। नक्षत्र और राशियाँ जातक के विभिन्न अंगों की सूचक है। राशियों/नक्षत्रों पर पड़ने वाले प्रभाव उनसे सम्बन्धित अंगों के प्रभाव की सूचना देते हैं। उन्हीं परिस्थितियों के अनुसार तत्तद् अंगों का विकास एवं उनमें आने वाली विकृतियों की सूचना मिलती है। इन प्रभावों को जानने के लिए जन्मकालिक लग्न के आधार पर बनाया गया आकाशीय मानचित्र जिसे जन्मचक्र कहा जाता है, उपयोग में लाया जाता है। जन्म चक्र के बारह भाव भी शारीरिक अंगों को व्यक्त करते हैं यथा –

भाव	अंग
प्रथम	सिर
द्वितीय	दक्षिण नेत्र
तृतीय	दक्षिण बाहु
चतुर्थ	दक्षिण वक्ष
पंचम	दक्षिण कुक्षि
षष्ठ	दक्षिण पाद
सप्तम	गुह्य
अष्टम	वाम पाद
नवम	वाम कुक्षि
दशम	वाम वक्ष
एकादश	वाम बाहु
द्वादश	वाम नेत्र

इन द्वादश भावों से न केवल शरीर की अवस्था का ज्ञान होता है, अपितु परिवार और अन्य आवश्यक विषयों का भी ज्ञान किया जा सकता है। जैसा कि इन भावों के नामों से ही स्पष्ट है। इन भावों का व्यावहारिक विश्लेषण किया जाय तो बहुत ही रोचक तथ्य सामने आते हैं यथा –
प्रथम भाव अपने व्यक्तित्व का सूचक है। व्यक्ति अपनी पत्नी या पत्नी अपने पति को अपने सम्मुख रखना चाहता/चाहती है। इसीलिए प्रथम भाव के सामने सप्तम भाव है। धन पर भी अपना अधिकार बना रहे इसलिए अपने एक ओर धन (द्वितीय भाव) और दूसरी और व्यय (द्वादश भाव) इसी प्रकार एक ओर अपना पराक्रम, क्रियाशीलता (तृतीय भाव) तो दूसरी ओर लाभ (एकादश भाव) एक ओर माता (चतुर्थ भाव) तो दूसरी ओर पिता (दशम भाव), एक ओर पुत्र/विद्या (पंचम भाव) दूसरी ओर धर्म/भाग्य (नवम भाव) एक ओर रोग एवं शत्रु (षष्ठ भाव) तथा दूसरी ओर मृत्यु (अष्टम भाव) का स्थान होता है।

द्वादश भावों में स्थित राशियों एवं ग्रहों के अनुसार उनके पारस्परिक सम्बन्धों का अवलोकन करते हुए शारीरिक अथवा अन्य विषयों का विचार किया जाता है। ग्रह अपनी प्रकृति तथा धातुओं के अतिरिक्त शरीर की विभिन्न प्रवृत्तियों पर भी अपना महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं, उन्हें भी दृष्टि में रखना आवश्यक है। इन प्रभावों के स्थान निम्नलिखित हैं –

आत्मा रवि: शीतकरस्तु चेत: सत्वं धराज: शशिजोऽथ वाणी।
ज्ञानं सुखं चेन्द्रगुरुर्मदश्च शुक्र: शनि: कालनरस्य दु:खम्।।[४]

अर्थात् सूर्यादि ग्रह मनुष्य के बाह्य अंगों के अतिरिक्त आन्तरिक भावों एवं शरीरस्थ धातुओं को भी प्रभावित करते हैं। जैसे –

ग्रह	प्रभाव क्षेत्र	धातु
सूर्य	आत्मा	अस्थि
चन्द्रमा	मन	रूधिर
मंगल	बल	मज्जा
बुध	वाणी	त्वचा
गुरु	ज्ञान, सुख	मेद (चर्बी)
शुक्र	मद	वीर्य
शनि	दु:ख	स्नायु (नस)

सूर्यादि ग्रहों से सम्बन्धित व्याधियों का विवरण इस प्रकार है –

सूर्यजनितरोग –

पित्तोष्णज्वरतापदेहपतनामयस्मरहृत्कोडज।
व्याधीन् वक्ति रविहृदार्त्यरिभयं त्वग्दोषमस्थिस्रवम्।।
कुष्ठाग्न्यस्रविषार्तिदारतनयव्यापच्चतुष्पाद् भयम्।
चौरक्ष्मापतिदेवफणिभृत्भूतेशभूताब्द्रयम्।।[५]

अर्थात् रोगकारक सूर्य बलशाली हो तो शरीर में पित्त, उष्णता, ज्वर, दाह, मूर्छा अपस्मार (मिर्गी), हृदयरोग, वस्तिरोग, नेत्ररोग, चर्मरोग, अस्थिभंग, कुष्ठरोग तथा अग्नि, शस्त्र, विष, पशु, सर्प, चोर, नृप एवं भूत प्रेतादि का भय होता है।

चन्द्रजनितरोग –

निद्रालस्यकफातिसारपिटका: शीतज्वरं चन्द्रमा:।
श्रृंग्याब्जाहतिमग्निमान्द्यकृशता योषिद्व्यथाकामिला:।।
चेतश्शांतिमसृग्विकारमुदकाद्भीतिं च बालग्रहात्।
दुर्गाकिन्नरधर्मदैवफणभृद्याक्षाच्च पीड़ां वदेत्।।[६]

मंगलजनितरोग-

तृष्णासृक्कोपत्तिज्वरमनलविषास्रार्तिकुष्ठाक्षिरोगान्।
गुल्मापस्मारमज्जाविहतिपरुषतापामिकादेहभंगान्।।
भूपारिस्तेनपीडासहजसुतसुहृद्वैरयुद्धं विधत्ते।
रक्षोगन्धर्वघोरग्रहभयमनवनीसूनुरूर्ध्वांगरोगाम्।।[७]

बुधजनितरोग –

भ्रांतिं दुर्वचनं दृगामयगलघ्राणोत्थरोगान् ज्वरं
पित्तश्लेष्मेसमीरजं विषमपि त्वग्दोषपाडवामयान्।
दुस्स्वप्नं च विचर्चिकां निपतनं पारुष्यबन्धश्रमान्।
गन्धर्वक्षितिहर्म्यवासिमयुभिर्ज्ञो वक्ति पीड़ां खगै:।।[८]

गुरुजनितरोग –

गुल्मान्त्रज्वरशोकमोहकफजश्रोतार्तिमोहामयान्।
देवस्थाननिधिप्रपीडनमहीदेवेशशापोद्भवम्।।
रोगं किन्नरयक्षदेवफणभृद्विद्याधराद्युद्भवं।
जीव: सूचयति स्वयं बुधगुरु कृष्णापचारोद्भवम्।।[९]

शुक्रजनितरोग –

पाण्डुश्लेष्मेमरुत्प्रकोपनयनव्यापत्तितन्द्रश्रमान्।
गुह्यास्यामयमूत्रकृच्छ्रमदनव्यापत्तिशुक्लस्रुती:।।
वासस्त्रीकृष्ज्ञिदेहकान्तिविहतिं शोफामयं योगिनी।
यक्षीमातृगणाद्भयं प्रियसुहृद्भङ्गं सित: सञ्चयेत्।।[१०]

शनिजनितरोग –

वातश्लेष्मविकारपादविहतीरापत्तितन्दीश्रमान्
भ्रान्तिं कुक्षिरुगान्तरुष्णभृतकध्वंसं च पश्वाहितम्।
भार्यापुत्रविपत्तिमंगविहितं हृत्तापमर्कात्मजो
वृक्षाश्मक्षतिमाह कश्मलगणै: पीडां पिशाचादिभि:।।[११]

राहुकेतुगुलिकजन्यरोग –

स्वर्भानुस्तनुतापकुष्ठविषमव्याधीन विषं कृत्रिमं
पादातिं च पिशाचपन्नगभयं भार्यातनूजापदम्।।
ब्रह्मक्षत्रविरोधशत्रुजभयं केतुस्तु संसूचयेत्।
प्रेतोत्थं च गदं विषं च गुलिक: सर्पार्त्तिमाशौचकम्।।[१२]

''शरीरं व्याधि मन्दिरम्''उक्ति स्पष्ट दर्शाती है कि व्याधियों का स्थान शरीर ही है एवं व्याधियाँ शरीर नष्ट होने के पश्चात् भी जीव का साथ नहीं छोड़ती है। ये अन्य जन्मों में भी शारीरिक कष्ट देते रहती हैं। प्रमुख रूप से व्याधियाँ तीन प्रकार की होती हैं – साध्य, असाध्य एवं याप्य। इनमें असाध्य व्याधियाँ प्राय: कर्मज होती है। साध्य व्याधियाँ प्राय: दोषज होती हैं। याप्य व्याधियों में प्राय: दोनों की संभावना होती है। असाध्य व्याधियों की प्राय: दो अवस्थायें होती है – 1. गर्भस्थ विकृतिजन्य 2. प्रसवोत्तर विकृतिजन्य।

उपचार पक्ष

ज्योतिष शास्त्र केवल शंका उत्पन्न नहीं करता, अपितु समाधान के लिए पथप्रदर्शक का भी कार्य करता है। इसीलिए इस शास्त्र का महत्व और भी बढ़ जाता है। ज्योतिषशास्त्र के कतिपय आयार्चों ने उपचार पद्धति को तीन श्रेणी में विभक्त किया है – 1. मणि 2. मन्त्र 3. औषधि।

1. मणि - ग्रहों की प्रकृति के अनुसार रत्न धातु आदि भौतिक साधनों के प्रयोग से ग्रहों के प्रभाव का शमन करना।
2. मन्त्र - ग्रहों के मन्त्र, व्याधिनाशक विविध मन्त्रों एवं स्तोत्रों के पाठ तथा शिवादि देवों की अर्चना तथा ग्रहों से सम्बन्धित पदार्थों के दान के द्वारा समाधान।
3. औषधि – आयुर्वेदादि विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों द्वारा व्याधियों के अनुसार निर्दिष्ट रसायनों का प्रयोग।

आयुर्वेद का सिद्धान्त है कि शरीर का नियन्त्रण वात-पित्त-कफ, इन त्रिधातुओं से होता हैं। इनमें किसी भी धातु के कुपित होने पर उस धातु से सम्बन्धित व्याधियाँ उत्पन्न होती है। अत: जिन क्रियाओं अथवा रसायनों से धातुओं में समता बनी रहे वही पद्धति या कार्य चिकित्सा है। यथा –

याभि: कियाभिर्जायन्ते शरीरे धातव: समा:।
या चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां मतम्।।

इस प्रकार आधानकालिक अथवा जन्मकालिक ग्रह स्थिति के आधार पर व्याधियों का ज्ञान कर तथा उनकी असाध्यता का निर्णय कर समाधान का प्रयास करना चाहिये। कभी-कभी व्याधियों के नियन्त्रण में केवल चिकित्सा से सफलता नहीं मिलती है, उस परिस्थिति में मणि, मन्त्र, औषधि आदि विधियों का प्रयोग विकृत होकर असाध्यता की ओर बढ़ रही व्याधियों के समाधान में सहायक होता है।

सन्दर्भ

1. जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते। - प्रश्नमार्ग: अध्याय – १३, श्लोक - २८
2. लघुजातक – अध्याय – १, श्लोक संख्या - ३
3. लघुजातक –अध्याय -५, श्लोक संख्या -६,७

4. लघुजातक – अध्याय -२, श्लोक १
5. प्रश्न मार्ग – अध्याय -१२, श्लोक – ६७
6. प्रश्न मार्ग – अध्याय -१२, श्लोक – ६८
7. प्रश्न मार्ग – मध्या -१२, श्लोक – ६९
8. प्रश्न मार्ग – मध्या -१२, श्लोक – ७०
9. प्रश्न मार्ग – मध्या -१२, श्लोक – ७१
10. प्रश्न मार्ग – मध्या -१२, श्लोक – ७२
11. प्रश्न मार्ग – मध्या -१२, श्लोक – ७३
12. प्रश्न मार्ग – मध्या -१२, श्लोक – ७४